(कवित्त)

घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधन मरति हैं।
जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन
व्याकुल बिकारभरी खरी सु जरति हैं।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी वीर
प्यारी पीर भीर क्यौं हूँ धीर न धरति हैं।
देखिये दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं ॥२९॥

प्रकरण—प्रिय के प्रति आँखों की वेदना का निवेदन सखी के या दूत के माध्यम से। आँखों की बीमारी असाध्य होती जा रही है। इस असाध्य रोग से बचने की संभावना नहीं है, अतः उनके समाप्त होने के पूर्व प्रिय उन्हें देख लेते तो अच्छा होता।

चूर्णिका—घेर = घिराव, रोग का आक्रमण। उबरानी = उचटी हुई, आँसू बहाती हुई। आरति = लालसाओं में लीन, अत्यंत दुःखी। साध = प्रबल उत्कंठा (देखने की ललक)। जीवन = जल; जिंदगी। रूप के अधार = रूप का अवलंब; सौंदर्य के आधार, अत्यन्त रूपवान्। खरी = बहुत। अतन = काम। अतन०=कामोपचार से, नेत्रोपचार से। अनखि=चिढ़कर, रुठकर। अरसानी = उदास हो गई हैं, यत्नों से मुँह मोड़ लिया है। वीर = हे सखी (संदेश ले जानेवाली दूती या सखी का संबोधन)। पीर-भीर = पीड़ा की भीड़, वेदना की राशि। असाध = (असाध्य) जो (रोग) अच्छा किया ही न जा सके। निपेटनि=(नि + पेटनी) अत्यंत पेटू, अत्यधिक खानेवाली। भसमी बिथा=भस्म कर देनेवाली व्याकुलता, भस्मक रोग की व्यथा। भसमक रोग का उल्लेख

वैद्यक के ग्रंथ 'भावप्रकाश' में है। इसका लक्षण यह बतलाया गया है कि इसके उत्पन्न होने से भोजन शीघ्र पच जाता है। इसलिए भूख बराबर बनी रहती है, अधिकाधिक खाने पर भी पेट भरता ही नहीं। देखिये = आँखें एक तो स्वभाव से पेटू हैं अर्थात् अधिक खानेवाली हैं, थोड़े में उनकी तृप्ति नहीं। उस-पर उन्हें भस्मक रोग हो गया है, जो खाती हैं वह भस्म होता जाता है, उस-पर करना पड़ रहा है लंघन। आँखों को प्रियदर्शन से तृप्ति नहीं। चाहे जितना देखें देखने की इच्छा तृप्त नहीं होती। ऐसा तो नेत्रों का स्वभाव और अभ्यास, और दर्शन मिल नहीं रहा है, फिर ये जिएँ तो कैसे।

तिलक—(सखी से प्रिय के प्रति संदेश) आपके वियोग में दर्शनेप्सु ये आँखें वेदना के घिराव से घबरा गई हैं। ये नित्य आँसू बरसाती रहती हैं। आपके दर्शन की लालसा में लीन ये प्रबल उत्कंठाओं की मार से मर रही हैं (परेशान हैं)। इनके जीवन का आधार था प्रिय का (सुजान का) रूप-दर्शन। उस अवलंब के बिना ये नाना प्रकार के विकारों से भर गई हैं, व्याकुल हैं और अत्यंत जल रही हैं। ये (विरहावस्था में तापशांति के लिए होनेवाले) कामो-पचारों से चिढ़कर पराङ्मुख हो गई हैं। पीड़ा की भीड़ में ये किसी प्रकार धैर्य धारण नहीं कर पातीं। इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप इन आँखों की असाध्य दशा को केवल देख तो लीजिए। ये अत्यंत पेटू हैं (आपके दर्शन की अति लालसा है इनमें) उस दर्शन के न मिलने से इनमें भस्म कर देनेवाली विरहजन्य व्यथा हो रही है। फिर भी इन्हें नित्य लंघन करना पड़ रहा है, आप के कभी दर्शन नहीं होते। अतः इनकी स्थिति उस अकिंचन भस्मक रोग के रोगी की सी हो गई है, जो जन्म से भारी पेटू रहा हो, अधिक खाने का अभ्यासी रहा हो, और फिर भस्मक रोग की चपेट में आकर अधिकाधिक भोजन की उसे आवश्यकता आ पड़ी हो फिर भी उसे खाने को कुछ भी न मिलता हो, नित्य लंघन ही करना पड़ता हो।

व्याख्या—घेरा० = जब कोई बहुत से व्यक्तियों के बीच में होता है तब उन व्यक्तियों की गरमी से ही विशेषतया गरमी के दिनों में घबराहट होने लगती है, भले ही वे व्यक्ति उसके अनुकूल ही क्यों न हों। फिर यदि कोई प्रतिकूल व्यक्तियों से घिर जाय तो उसकी घबराहट बहुत अधिक हो जाती है। घेरनेवाले व्यक्ति यदि सबके सब एक ही बेर आकर घेर लें तो और घबराहट। यदि वह

विराव बराबर बना रहा तो अधिक व्याकुलता। वेदनाओं का घिराव इसी प्रकार का है। उबरानी = उक्त प्रकार के घिराव में पड़ा सिवा रोने के क्या कर सकता है। यदि घिरा हुआ व्यक्ति अबला हो तो उसकी घबराहट और अधिक। यहाँ आँख शब्द इसी से रखा गया है। नयन आदि पूर्वबोधक शब्द नहीं लाए गए हैं। घनआनंद = घना आनंद देनेवाले के दर्शन की लालसा में अनुरक्त। राती शब्द केवल अनुरक्त अर्थ नहीं दे रहा है उससे लाल अर्थ भी निकल रहा है। आँखों में पीड़ा होते ही वे सबसे पहले लाल हो जाती हैं। आँख लाल होकर अपने रुग्ण होने का, पीड़ित होने का संकेत दे देती हैं। सावनि० = आँखों के चारो ओर घिराव से, जिसे वे देखना चाहती हैं उसे देखने में उस घिराव से ही बाधा हो जाती है, फिर भी यदि आँसू बहते हों तो उनके कारण यदि कोई दिखता भी हो तो आँसू देखने में बाधा देते हैं। तीसरी बाधा आँखें लाल होकर गड़ने लगती हैं तो अन्य किसी बाधा के न रहने पर भी वे पलकें खोलकर नहीं देख पातीं। अतः साधों से, देखने की प्रबल इच्छा से, परेशान रहती हैं। मरनि हैं = आँखों का जीना यही है कि वे दर्शनीय को देखें। जब दर्शनीय दिखाई नहीं पड़ता केवल प्रचंड दर्शनेप्सा में ही घुटना है तब आँखें मरी दाखिल हैं। जीवन = नेत्रों का पानी मुजान का रूप ही है। वह रूप चाँदी की ऐसी सलाई है जिसके नेत्रों में दे लेने से उसके विकार निकल जाते हैं। यदि वह रूप न दिखे तो विकार भरते ही जायँगे, बढ़ते ही जायँगे। उनके बढ़ने से भीषण जलन होने लगेगी। वही हो रहा है। 'जीवन-आधार' तो नेत्रों का भीतरी आधार है। पर नेत्रों के लिए प्रिय का रूप (निधि-रूप), केवल भीतरी आधार नहीं है। बाहरी आधार भी है। इसी परदे पर वे टिकती भी हैं, अन्यत्र नहीं। खरी० = भीतर तो जलन है ही। बाहर भी जलन, जिन रूपों पर दृष्टि जाती है वे सभी दाहक हो रहे हैं। जितने दृश्य दिखते हैं सब विकार बन जाते हैं। अतन = विरह को दूर करने के लिए किए जानेवाले उपचार, जलन को दूर करने के लिए किए जानेवाले उपचार। 'जतन' 'जतन' में द्विरुक्ति भी हो सकती है 'जतन घटन'। इन उपचारों से लाभ नहीं होता। जलन घटने के बदले और बढ़ जाती है। अनखि = चिढ़ने का कारण यह है कि सखियाँ तो यह समझती हैं कि इस उपचार से लाभ होगा, इसलिए एक उपचार से लाभ न होने पर दूसरे का प्रयोग साहस बँधाकर करती हैं, पर उससे भी दाह बढ़ता ही है,

इसलिए उपचार मात्र से चिढ़ हो गई है। अरसानी० = उदास होने या मुँह मोड़ने का कारण यही है कि अब आँखें उपचारजन्य दाह सहन करने में अशक्त हो गई हैं। प्रकृति चाहे जो करे, आपसे आप चाहे जो हो, आँखें फूटें या बचें अब उनपर उपचार का प्रयोग व्यर्थ है। पीर = संदेश वहन करनेवाली सखी या दूती के ही लिए नहीं, आँखों के लिए भी विशेषण हो सकता है। प्यारी = ये प्यारी आँखें, अथवा इसे 'पीर' का विशेषण भी मान सकते हैं। यह 'पीड़ा' मधुर पीड़ा है, मीठी पीड़ा है, प्रेम की पीड़ा है। यों सामान्यतया यह पीड़ा कुछ अंशों में प्रिय की ओर से होनेवाली होने के कारण स्वयम् प्रिय है। यह पीड़ा पहले तो प्यारी ही लगी, पर जब पीड़ाओं की भीड़ लगी तब 'अति' से कष्टदायिनी हो गई, इस प्रकार 'प्यारी' को संगति 'पीर' से भी बैठा ले सकते हैं। या विपरीत लक्षणा से कष्टद अर्थ भी ले सकते हैं। अथवा पंजाबी का प्रयोग मानकर 'घनी' अर्थ भी ले सकते हैं। क्यौंहूँ = उपचार करने से भी और उपचार न करने से भी। धरति = धैर्य पकड़ में ही नहीं आता है। पीड़ाओं की भीड़ के बाहर है धैर्य, पहले उस भीड़ से निकल आए तब तो उससे भेंट हो। दसाध = मर रही है 'साध' से और दशा हो गई 'असाध', साध की पूर्ति से रहित। असाध का अर्थ असाध्य तो है ही पर उसकी दूसरी व्यंजना है कि जिन नेत्रों की साध न पूर्ण हुई हो उनकी स्थिति असाध हो गई, साध की पूर्ति से रहित। किसी पेटू की साध अधिक खाने की, भस्मक रोग से और अधिक खाने की, फिर भी लंघन करने से और अधिक साध, पर स्थिति असाध। भस्मक रोग यदि लघु आहार करनेवाले को हो और उसे खाने को इच्छित मिलता जाए तो औषध से साध्य होता है। यदि भुक्खड़ को हो और पूरा भोजन न मिले तो दुःसाध्य होता है। जब खाने के ही मिलने में कठिनाई हो तो असाध्य होता है। अखियाँ = दोनो आँखें। दो को एक ही प्रकार का एक-सा रोग हो तो विलक्षणता ही है, क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति के भेद से रोग में अंतर पड़ता है।

अलंकार—विरोधाभास।

पाठांतर—उबरानी—डबरानी। मलिन या उदास ही बनी रहती हैं, मन में खलबली मची रहती है। अधार—अहार। रूप का आहार, भोजन। भोजन न

करने से भी तरह-तरह के विकार शरीर में होने लगते हैं। नेत्रों को आहार नहीं मिलता इससे विकारग्रस्त हो रहे हैं।

बिकच नलिन लखें सकुचि मलिन होति,
ऐसो कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ समीर आएँ बहकि दहकि जाय
राग भरे हिय में बिराग मुरझनि है।
जहाँ जान प्यारी रूप गुन को न दीप लहै
तहाँ मेरे ज्यौ परै बिषाद गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सों
क्यौं हूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है। ३०॥

प्रकरण—प्रिय के प्रति विरहिणी का विरह-निवेदन। आँखों, हृदय और प्राण की दशा का उल्लेख। विरहदशा की विलक्षणता, उसके वेग और उपायाभाव का निदर्शन।

चूर्णिका—बिकच = खिला हुआ। नलिन = कमल। उरझनि = उलझन। सौरभ = सुगंध, सुगंधित। बहकि = बहककर, सुधबुध खोकर। दहकि जाय = जल उठती है। रागभरे = प्रेमयुक्त। बिराग = विराग के कारण मन मुरझा जाता है। कमल आदि को देखकर उनसे विराग होता है और हृदय में मुरझन हो जाती है संयोग में 'कमल, सौरभ, समीर' आदि प्रेम के उद्दीपक होते हैं हर्ष उत्पन्न करनेवाले, वियोग में इनसे क्लेश उद्दीप्त होता है, विषाद उपजता है)। रूप = सौंदर्य; रूपा, चाँदी। गुन = गुण; बत्ती। ज्यौ = जीव, मन (में)। गुरझनि = गाँठ। जहाँ = जहाँ प्रिय के रूपगुण का प्रकाश नहीं मिलता (जहाँ वह दिखाई नहीं पड़ता) वहाँ मेरे हृदय में दुःख की गाँठ पड़ जाती है (दुःख जम जाता है)। अटपटी = बेढंगी, विलक्षण। निपट = अत्यंत। चटपटी० = अति प्रबल वेग से। न सूझै = सुलझाव का कोई उपाय नहीं दिखाई देता।

तिलक—विरह में वे वस्तुएँ, जो संयोग में सुख देती थीं, दुःखदायिनी हो गई हैं। आँखें जो पहले (संयोग में) कमल को देखकर प्रसन्न होती थीं अब खिला कमल देखकर संकोच से मलिन हो जाती हैं। इन आँखों में कुछ अनोखी, नए ढंग की, उलझन हो गई है। सुगंधित वायु के शरीरगत संस्पर्श

से कभी हृदय शीतल और प्रफुल्लित होता था। पर प्रिय के राग से भरे हृदय में अब उस वायु के कारण विराग हो रहा है, उधर उसकी प्रवृत्ति हो नहीं होती। पहले हृदय प्रवृत्यात्मक था अब निवृत्यात्मक हो गया है। अब वह पहले तो बहक जाता है फिर जल उठता है। उसमें मुरझाहट हो आती है। मन की स्थिति यह है कि सुजान प्रेयसी के रूप-गुण का दीपक न पाने से इसमें विषाद की ग्रंथियाँ पड़ती जाती हैं और ग्रंथि में कहाँ क्या पेंच है उसे कैसे खोलें इसके लिए प्रकाश मिलता नहीं, इससे गाँठें ज्यों की त्यों पड़ी हैं। हा विरह की यह कैसी वेढंगी दशा है, इसमें अत्यंत प्रबल वेग तो हो आता है, पर उस वेग के आ जाने से स्थिति बिगड़ जाती है, किसी प्रकार सुलझने का मार्ग ही नहीं सूझता।

व्याख्या—बिकच० = खिला कमल देखने से प्रिय के प्रसन्न मुख का स्मरण हो आता है। इसलिए नेत्र उदास हो जाते हैं। कमल सूर्य को देख कर खिलते हैं और उसे न देखने पर मुरझा जाते हैं। पर उन्हें देखकर कोई खिलता चाहे हो पर मुरझाता नहीं, विरही अलबत्त उन्हें देखकर मुरझाता है। वह सोचता है कि प्रिय के प्रति इन कमलों में कैसी आस्था है कि प्रिय को देखकर खिलते हैं और उसे न देखकर मुरझा जाते हैं। प्रेमी की आँखें भी कमल की भाँति हैं वे अपने प्रिय के प्रति कमलवृत्ति दिखाती हैं इससे संकुचित होती हैं और मलिन होती अर्थात् मुरझा जाती हैं। कमलों का प्रिय फिर भी समय पर आया जाया करता है पर मेरे प्रिय के समय पर लौटाने की भी संभावना नहीं है, इनकी मलिनता का कारण यह है। कछू अनोखो उरझनि = अनोखी उलझन इसलिए कि आँखें कमल की सजातीय हैं। अपना गोत बढ़ते देखकर सुख होना चाहिए, यहाँ दुःख होता है। अपने से सकुचना उलटी बात है। कोई किसी कारण कुछ संकोच करे भी तो मलिन तो नहीं ही होता। पर आँखें नई बात कर रही हैं। सौरभ० = सुगंधित वायु से प्रिय की सुवास का स्मरण हो जाता है। सौरभ का कार्य है पोषण, पर यहाँ हृदय बहक जाता है। सुगंध से बहके का बहकना बंद होता है, यहाँ उलटी हो रही है। सौरभ-समीर से शीतलता मिलती है, यहाँ; जलन उठती है। राग० = संयोग में हृदय राग से भरा था, वियोग में तो राग अधिक हो होगा। पहले उसमें ऐसा नहीं होता था जैसा अब हो

रहा है। राग से जो भरा है उसमें विराग कहाँ से आया, विशेष राग हो तो हो सकता है, विगतराग नहीं हो सकता। जहाँ=जबतक प्रिय का दर्शन रहता है तबतक तो बात बनी है, ज्यों ही प्रिय के दर्शन का अभाव हुआ, वियोग में ही नहीं संयोग में भी प्रिय का दर्शन न होवे पर विषाद होता है। जान० =सुजान, ज्ञानयुक्त, ज्ञान को प्रकाश कहते ही हैं। व्यंजना में चाहें तो 'जान प्यारी' को प्राण-प्यारी भी कह सकते हैं। जो प्राणों को प्रिय हो उसके दर्शन न होने से 'जी' (प्राण) का विषादमय होना ठीक ही है। रूप=सौंदर्य, चाँदी की भाँति उजला भी और शीतल भी। प्रिय के रूप ही नहीं उनके गुण की विशेष प्रकार की मुद्राएँ, चेष्टाएँ आदि। 'रूप गुण का दीपक' कहने में रूप-गुण ही दीपक भी हैं और प्रकाश भी हैं। ज्यो०= जी में प्रकाश नहीं रहता कहने में यह भी है कि उसमें जो ज्योति है वह प्रिय के रूप-गुण के ही कारण है। जी में अपना प्रकाश भी नहीं है। यदि प्रकाश होता तो कुछ तो विषाद या अज्ञान या अंधकार छँटता रहता। जब जी में प्रकाश नहीं तो नेत्रों में भी प्रकाश नहीं रह जाता। परे० =पड़ जाती है, गाँठ गहरी पड़ती है। 'गाँठ पड़ने' और 'गाँठ होने' में अंतर है। गाँठ पड़ी, गहरी पड़ी, गाँठ होगी तो गहरी भी हो सकती है और नहीं भी हो सकती। विषाद० =विषाद की गाँठ का तात्पर्य है अनेक विषादों की गाँठ, एक विषाद दूसरे से उलझ जाता है। ऐसा उलझता है कि उनमें से कोई बाहर नहीं हो पाता। यदि गाँठ न होती तो कदाचित् कोई विषाद तो हट जाता। अटपटी०= ऊँची-नीची, एक प्रकार की नहीं, बेढंगी। दशाएँ केवल बेढंगी नहीं हैं उनमें वेग भी बहुत अधिक है। सों=से, सहित; केशवदास के 'स्यों' की स्थिति। क्यों हूँ=न तो आँखों में प्रकाश, न मन में प्रकाश, न गाँठों पर प्रकाश और न गाँठ खोलनेवाले के पास कोई युक्ति। इससे सुलझना तो दूर स्वयम् सुलझना ही नहीं दिखाई देता।

व्याकरण—'होति'=यहाँ बहुवचन है। 'होतिं' के अर्थ में है। व्रज में 'होतिं' तो चलता है, पर 'होति' से दोनो वचनों का काम चला लेते हैं। अनोखी=संस्कृत 'नवक' से नोक, नोख फिर 'अ' का आगमन आरंभ में, 'अनोख', अनोखा, अनोखी। 'नोखे की नायन बाँस की नहरनी' में अपने पूर्वरूप में ही है। 'मेरे ज्यौं' में 'ज्यौं' अधिकरण में है। विभक्ति लोप के कारण 'मेरो'

का मेरे। सर्वनाम विशेषण हो गया है। अटपटी = अट्ट = ऊँचा, पट = नीचे की ओर, ऊँची-नीची, विषम। निपट = जिससे किसी की पट न सके, जिसका पटाव या समाप्ति न समझी जा सके, अत्यंत।

पाठांतर—लखें-देखें। लखना ध्यान से देखना, किसी विशेष छान-बीन की वृत्ति से देखना होता है। इसलिए लख पाठ ठीक है।

तब ह्वै सहाय हाय कैसें धौं सुहाई ऐसी
सब सुख संग लै वियोग दुख दै चले।
सींचे रस रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि
अंतर में विषम विषाद-बेलि वै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनंद के
गोहन न लागे जब वे करि बिजै चलै।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई
हेली मनभावन अकेली मोहिं कै चले। ३१॥

प्रकरण—संयोगावस्था से वियोगावस्था में क्या अंतर पड़ गया है और प्राणों पर क्या आ बनी है इसका वर्णन है। प्रिय के संयोग से सभी सुखदायक स्थितियाँ साथ थीं। वियोग में कोई साथ देनेवाला नहीं; अकेले कष्ट भोगना पड़ रहा है। प्राण भी पहले ही निकल गए होते तो अच्छा था! अब उनसे वेदना सही नहीं जाती है। नायिका की उक्ति सखी के प्रति, प्रिय की निष्करुण वृत्ति का उल्लेख।

चूर्णिका—ह्वै = होकर, हुए। सहाय = सहायक, प्रेम में साथ देनेवाले। सुहाई = (अब) ऐसी (दुःखद) बातें कैसे अच्छी लगी? रस = जल; प्रेम। सींचे = अपने प्रेम के रंग से युक्त मेरे अंगों को काम के हवाले करके। अंतर = हृदय। वै = बोकर। निगोड़े = स्त्रियों की गाली, जिसके यहाँ कोई गोड़ (व्यक्ति) न हो, निर्वंश; जिसके गोड (पैर) न हो, चलने में अशक्त। गोहन = साथ। बिजै = (विजय) हृदय पर विजय प्राप्त करके, हृदय को वश में करके। पीर-भीर = पीड़ाओं की भीड़, वेदनाओं की राशि। हेली = (खेली अथवा हेला करनेवाले) खेल करनेवाले, खिलाड़ी, क्रियाशील (अथवा हे अली, हे सखी)। मनभावन = मन को भानेवाले प्रिय।

तिलक—हे सखी, पहले जो प्रिय सहायक हुए उन्हें न जाने कैसे ऐसी

करनी अच्छी लगी कि वे अपने साथ समस्त सुखों को लेते गए, केवल विछोह का दुःख मुझे देकर मुझसे वियुक्त हो गए। जिन्होंने संयोग में प्रत्येक अंग को प्रेम के आनंद के रस से सींचा था उन्हीं अंगों को अपने पास न रखकर अनंग (कामदेव) के हवाले करके और उसी सिंचाव को दूसरी ओर प्रवृत्त करके हृदय में विषम विषाद की लता बोकर वे चले गए। पहले जो रस-रंग अंग को सींचता था वही अब विषाद की लता को सींचने लगा। ये प्राण अब तो छटपटा रहे हैं पर ये निगोड़े प्राण आनंददायक प्रिय सुजान के साथ उस समय ही न जाने क्यों नहीं लग लए जब वे हृदय को वश में करके यहाँ से जाने लगे (कदाचित् इन प्राणों में गतिशीलता ही नहीं रह गई थी इसी से ये उनके साथ नहीं जा सके)। अब तो केवल विषाद या वेदना एक नहीं है, उस वेदना की भीड़ लगी है। उनके घिराव से अधैर्य हो रहा है। वे प्रिय मुझे इस घिराव में अकेले छोड़ गए। सहायक को कष्ट में भी हाथ बँटाना चाहिए था पर उन्होंने कष्ट में मुझे अकेला ही छोड़ दिया।

व्याख्या—तब = संयोगावस्था में, इससे यह स्पष्ट है कि प्रिय को अनुकूलता संयोगावस्था में प्रेमी को प्राप्त थी, या कम से कम प्रेमी संयोगावस्था में उनकी मुद्राओं चेष्टाओं से अनुकूलता अनुभव करता था। प्रेम के क्षेत्र में तीन स्थितियाँ रहती हैं प्रिय की प्राप्ति को लेकर—अयोग, संयोग, वियोग। प्रिय से प्रेमी का जब 'अयोग' रहता है तब वह भी एक प्रकार का 'वियोग' ही होता है। अयोग की इस स्थिति को पूर्वराग या पूर्वानुराग कहते हैं। अयोग की या पूर्वानुराग की स्थिति से संयोग की स्थिति उत्पन्न होने से प्रेमी की धारणा यह है कि पहले जो पूर्वराग का विरह था उसमें तो प्रिय ने सहायक का आचरण किया और संयोग का सुख मिला। अब तो वियोग में उस पूर्वराग से बढ़कर कष्ट हो रहा है, फिर भी वह सहायक नहीं होता। उसके सहायक होने से ही तो इस लालसा का उदय हुआ कि इस समय भी उसकी सहायता हो। सहाय = सहायता करनेवाला जिसकी सहायता करता है उसको या उसकी स्थिति को गौरव देकर ही ऐसा करता है इससे उसका पक्ष गुरु-पक्ष होता है। पहले यह गौरव देकर अब ऐसा क्यों कर रहे हैं। हाय = वेदना की अधिकता व्यंजित करने के लिए। जिससे जो संभावना न हो उससे वही प्राप्त हो तो अधिक वेदना होती है।

उसमें यह प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों हुआ। कैसें धौं = न जाने कैसे, अभी तक वैसा करने के हेतु का पता नहीं चल सका है। आगे भी पता चल जायगा ऐसी संभावना नहीं है। साथ ही अनुकूलता और पराङ्मुखता में विषमता बहुत अधिक है। ऐसा क्यों हुआ, इतना अधिक क्यों हुआ। इसकी स्पष्टता आगे के 'ऐसी' शब्द से होती है। सुहाई ऐसी = प्रिय यदि किसी प्रेमी को कार्याधिक्य आदि कारणों से भूल जाए तो भी कहा जा सकता है कि उसके आचरण में औचित्य है। जो किसी का प्रेमी हो यदि उसको कष्ट देना प्रिय को अच्छा लगने लगे तो आश्चर्य की बात है। उसे कष्ट देना रुचने लगा है। सब सुख = यदि ऐसा न होता तो वह अपने साथ सब प्रकार के सुखों को क्यों लेता जाता। संग ले = अपने साथ ही ले गया है। सुखों को यह स्वतंत्रता भी नहीं दे गया कि वे प्रेमी के पास स्वयम् जा सकें। बिछोह० = प्रिय के 'वियोग' का दुःख उसके अभाव का दुःख है। पर उसके 'बिछोह' का दुःख उसके 'छोहरहित' होने का है, प्रिय के वियोग का दुःख होता तो इतना अधिक न होता। प्रिय 'छोहरहित' ममत्वरहित, प्रेमरहित है। 'बिछोह' का दुःख 'वियोग' के दुःख से बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है। अभाव का सद्भाव हो सकता है पर यदि किसी में ममत्व या प्रेम ही न हो तो उसे उत्पन्न करना कठिन होता है। दै चले = देकर चले ही गए; यह भी न देखा कि इससे उसको कितना कष्ट होगा। दुःख भी संग न लग जाए इसलिए चलते बने, रुके तक नहीं। सींचे = जिन अंगों को प्रेम के रंग से सींचा था, स्वयम उन अंगों का पोषण किया था, किसी से सिंचवाया नहीं था। सींचने में रस लेते थे, 'रंग' या आनंद का अनुभव स्वयम् भी करते थे। वह 'रस' और वह 'रंग' भी उन्हीं का था जिससे सींच रहे थे, कहीं अन्यत्र से नहीं लाए थे। पर विपरीत आचरण यह किया कि जो अनंग है—अंग से रहित है—उसे उन अंगों को सौंप दिया तब गए। भला जिसके अंग ही न हो वह अंग की चिंता क्या करेगा। सौंपि = सपुर्द कर गए, उसी को भविष्य में अंगों की देख-भाल करने के लिए दे गए। अपने आप जो अतिचार किया, सो तो किया ही जिसे सौंपा वह भी अंगों के प्रति न्याय करनेवाला नहीं। अन्तर मैं = बाहर होती तो कदाचित् हटा दी जा सकती। भीतर होने से उसकी जड़ दृढ़ होगी, शीघ्र हटाए हटेगी नहीं। विषम० = जिस विषाद के रूप में समता नहीं है। तीव्र वेग हो हो पर सम हो तो हो सकता है कि उसके सहन

करने की साहस-वृत्ति संचित कर ली जाए। यह तो कभी कुछ और कभी कुछ रहता है। लता की गति मनमानी होती है जिधर ही बढ़ गई उधर ही, विषाद की भी ऐसी ही स्थिति है। वै = बोकर चले गये, अनंग को अंग सौंपे और विषाद-बेलि भी बोकर सौंप दी। वही माली की भाँति इसके विस्तार के प्रयत्न करता रहेगा। जो अंग रस-रंग से सिंचे हैं उनका रस-रंग अब वह विषाद-बेलि में ले लेकर दे देगा। वह विषाद की बेलि उसी रस-रंग से सिंचकर बढ़ेगी। क्यों धौं = न जाने क्यों। इस समय निकलना चाहते हैं। उस समय यदि प्राण निकल गए होते तो प्रिय का साथ उन्हें मिल जाता। अब यदि निकलें भी तो प्रिय को खोजेंगे कहाँ, वह तो न जाने कहाँ है। ये प्राण मुझे इस समय कष्ट दे रहे हैं प्रिय की ओर ही देखते हैं मेरी ओर ध्यान नहीं देते। यदि ऐसा ही करना था तो प्रिय के साथ क्यों न चले गए, मुझे क्यों कष्ट दे रहे हैं। अपने को सँभालना तो कठिन है फिर प्राणों को कौन सँभाले। ये उन्हीं के लिए रो रहे हैं। उन्हीं के साथ चले जाते तो कम से कम इनके रोने-कलपने से तो राहत मिलती। ये = प्राण नित्य बहुवचन है। एक नहीं अनेक होने से अधिक कष्ट है। एक को ही सँभालना कठिन है, इन पंच प्राणों को कौन सँभाले। निगोड़े० = जिनका कोई न हो उन अनाथों को पालना तो और भी कष्टसाध्य होता है, अपने पास उनके पालने के योग्य सामग्री भी कहाँ है। वे प्रिय के साथ गए होते तो अच्छा था। प्रान० = प्राण को 'जान' के साथ जाने में घन् आनंद मिलता। यहाँ तो विषाद है। गौहन = जिसने मुझे जीता जब उसी की ओर इन्हें प्रवृत्त होना है तब मुझ पराजित को उसी समय छोड़ देते, विजयी के साथ ही चले जाते। अब मेरे साथ दुःख भोगते क्यों नहीं। उसके साथ नहीं लगे तो मेरे साथ लगें, मेरा साथ दें। ऊधव = परदेश जाते समय मुझे विवश करके जब वे जाने लगे, उनके साथ भारी लाव-लश्कर था। प्राणों का गुजर उनके साथ हो जाता। मुझ अकेली के पास क्या धरा है। 'वै' आदरार्थ ही बहुवचन नहीं, बहुत्वबोधक भी है। अति० = मेरे अधैर्य का हेतु एक नहीं है, अनेक हैं। ऊपर से ही बहलाती आ रही हूँ। संप्रति उनका नया हेतु भी आ गया है, पीड़ाओं की भीड़ ने घेर लिया है। इस अवसर पर सहायक की अपेक्षा थी। हेली = क्रीड़ाशील, स्वयम् तो क्रीड़ाशील हैं, केलि में ही पड़े रहते हैं, उनकी यह भी एक केलि (क्रीड़ा) है कि उन्होंने इस प्रकार

मुझे परित्यक्त कर रखा है, उन्हें मेरा इस प्रकार विरह-कष्ट झेलना रुचता है। स्वयम् तो 'स + केलि' हैं और मैं 'अ + केलि' रहती हूँ। मोहि = मुझे, अथवा मोहित करने के अनंतर मुझे अकेली करके, छोड़कर चलते बने। मनभावन = मन को रुचनेवाले, मेरे मन को तो वे रुचते हैं और उनके मन को कष्ट देना रुचता है।

रोम-रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन
तऊ जान प्यारी निबरैं न मैन-आरतैं।
ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहि
विष-भोयो विषम वियोग-सर मारतैं।
दरस - सुरस - प्यास भाँवरे भरत रहौं
फेरियै निरास मोहि क्यौंधौं यौं द्वार तैं।
जीवनअवार घनआनँद उदार महा
कैसें अनसुनी करौं चातिक पुकार तैं ॥३२॥

प्रकरण—प्रेमी की पृच्छा है प्रिय या प्रिया या प्रेयसी से, मुझे वियोग में क्यों डाला गया, अपने द्वार से निराश क्यों लौटाया गया, मेरी पुकार क्यों नहीं सुनी गई।

चूर्णिका—रोम० = यदि प्रत्येक रोम जीभ बनकर वाणी का गुण पा ले, रोएँ-रोएँ में बोलने की शक्ति आ जाए। तऊ = तो भी। निबरैं न = चुक नहीं सकतीं। मैन-आरतैं = कामजन्य लालसाएँ। दिनदीन = दिन-दिन दीन, सदा दीन। विष-भोयो० = विष से भींगा या बुझा हुआ। मारतैं = मारते हुए। दरस० = दर्शन-रूपी सुरस (मीठे जल) की प्यास के कारण, उसे बुझाने के विचार से। भाँवरे० = चक्कर काटता रहता हूँ। फेरियै० = इस प्रकार निराश करके मुझे अपने द्वार से क्यों लौटाते हैं ? तैं = तूने।

तिलक—हे सुजान प्रिय, मेरी कामजन्य लालसाएँ इतनी अधिक हैं कि यदि प्रत्येक रोम में जीभ हो जाए और बोलने की शक्ति भी मिल जाए और सब रोम उन लालसाओं का आह्वान करने लगें तो भी वे इतनी अधिक हैं कि कहकर समाप्त नहीं की जा सकतीं। जिसकी प्रिय के प्रति इतनी लालसाएँ रही हों कि प्रियप्राप्ति से ही कुछ पूर्ण हो सकती हों, जो इन लालसाओं की आपूर्ति के कारण दिन प्रति-दिन दीन होता जा रहा हो, दैव के नाम पर आपको

उसे वियोग का विष में बुझा बाण मारते दया नहीं आई। मैं आपके दर्शन से सुरस (मीठे जल) की प्यास बुझाने के लिए आपके द्वार पर चक्कर काटता रहा और मुझे आपने द्वार से न जाने क्यों निराश लौटा दिया। हे जीवन (जल; जिंदगी) के आधार आनंद के बादल अत्यंत उदार आपने अपने चातक की पुकार कैसे अनसुनी कर दी।

व्याख्या—रोम-रोम० = असंख्यता व्यक्त करने के लिए पहले तो कहने-वाले को संख्या अनगिनत रखी, रोओं का गिनना कठिन है, वे बहुत हैं, अनगिनत हैं। फिर वे बोलें अर्थात् बराबर बोलते रहें। बोलने में नैरंतर्य भी हो, फिर भी वे लालसाएँ कहकर चुकाई नहीं जा सकतीं। रसना = रस का अनुभव करनेवाली रसना, जीभ क्या कहेगी। नाम चुनने में इसका ध्यान रखा है कि वह रसात्मक अनुभूति को ग्रहण करने में समर्थ है। इसी से केवल रसना कहकर संतोष नहीं किया गया। लहैं० = वाणी का गुण भी प्राप्त करे, केवल आस्वाद मात्र का अनुभव करके न रह जाए। रसना से आस्वाद भी प्राप्त होता है और यह वाणी को व्यक्त करने में भी समर्थ है। गिरा० = केवल वाणी ही नहीं, स्वयम् वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के गुण, वे जो चाहें उसे व्यक्त कर सकती हैं, निरंतर बोल सकती हैं। जान प्यारी = 'जान प्यारे' पाठ होना चाहिए। 'प्यारी' शब्द ठीक नहीं बैठता। आगे 'घनआनंद' पुलिंग शब्द आया ही है अथवा 'प्यारी' शब्द का अन्वय 'आरतैं' से किया जाए। निवरैं = निवृत्त हों, समाप्त हों। मैन० = काम-लाल-साओं से पूर्वानुराग की स्थिति का वर्णन स्पष्ट हो जाता है। दिनदीन = 'दिनदानी' का प्रयोग तुलसी ने किया है, उसी ढर्रे पर 'दिनदीन', प्रति-दिन दीन। पहले दिन जितना दीन है अगले दिन उससे अधिक दीन, उससे आगे के दिन और दीन, इसी क्रम से उत्तरोत्तर जो दीन होता चला जाए। दया न आई = किसी दीन पर किसी को दया न आए तो न आए पर जो दिन-दिन अधिकाधिक दीन होता जा रहा हो उसपर निर्दय को भी दया आ जाती है। कोई हृदय से दयाशील हो या फिर दया के आलंबन में आकर्षण हो। यहाँ दया के पात्र में अधिक आकृष्ट करने की स्थिति दिखाई गई है। दई = हे दैव, 'दयी' होने से 'दयावाला' अर्थ भी निकलता है। 'दयी' होकर भी निर्दय यह विरोध। विष-भोयो० = विष से बुझे बाणों से प्राण निकलने में भारी कष्ट

होती है, बचने की संभावना नहीं रहती, इतनी अधिक क्रूरता। बिषम = जिसकी स्थिति सम नहीं है, जो शरीर में एक ही स्थान पर लगकर वहीं कष्ट नहीं देता कभी यहाँ कभी वहाँ कभी सर्वांग में। विष से बुझे बाण 'बिषम' (विषमय) तो होंगे ही। बियोगसर = वियोग के बाण कल्पित करने में कई हेतु हैं। यह वियोग ऐसी दिशा से आया है जिस पर ध्यान नहीं था, संभावना नहीं थी कि उधर से यह दुःख आनेवाला है, दूसरे सहसा, तीव्रता से यह आया। घातक भी सिद्ध हुआ। वियोग-पक्ष में विषम का अर्थ होगा जो एक ही पक्ष में वेदना उत्पन्न करता है, प्रिय में न वेदना है, न प्रेमोन्मुख होने की प्रवृत्ति, केवल प्रेमी में ही यह सब है। दरस-सुरस० = प्रिय का दर्शन 'सुरस' अधिक रसीला, अति आनंद-दायक है, मीठे जल की भाँति। बाण लगने पर भी जो दर्शन की प्यास से ही बाण मारनेवाले के वासस्थान पर चक्कर काटता हो, उसकी उसके प्रति कितनी आस्था होगी। बाण तो दर्शन पर भी लगेंगे। वियोगबाण से दर्शन के समय कटाक्ष-बाण से विशेष अंतर है, ये अच्छे लगते हैं और इनके लगने की प्यास बुझती ही नहीं। इच्छा होती है कि और लगें। भाँवरे भरत रहौं = प्यास लगने पर छटपटाहट होती है जिससे प्यासा इधर-उधर चलता फिरता रहता है, जल की खोज में दौड़ता रहता है। 'भरत रहौं' से नैरंतर्य व्यंजित है। रुकने का नाम नहीं। फेरिये = फिरता तो हूँ पर आप फिरा दें यह ठीक नहीं, स्वयम् आपके चारो ओर चक्कर काट रहा हूँ आप यहाँ से हटाकर अन्यत्र फिरा दें यह ठीक नहीं। पर उसके लिए भी तत्पर हूँ यदि 'निराश' न लौटना हो। निरास = आगे के लिए भी आशा नहीं है। क्यों धौं = हेतु की कल्पना नहीं की जा सकती। कोई ऐसा कारण नहीं प्रतीत होता जिससे मेरे लौटा देने का औचित्य सिद्ध हो सके। यौं = भिखारी को भी लोग नहीं लौटाते कुछ दे देते हैं, आपसे तो मैं दर्शन मात्र चाहता हूँ, जिसमें गाँठ का देना भी कुछ नहीं है। द्वार तें = अन्यत्र किसी की ओर कोई ध्यान न दे पर द्वार पर आए शत्रु से भी अच्छा व्यवहार करते हैं, पर आप अपने द्वार से ही इस प्रकार लौटा रहे हैं। जीवन० = जो प्राणों का आधार है वह यदि विमुख हो जाए तो ठीक नहीं जान पड़ता। घनआनँद = जो आनंद की वृष्टि करनेवाला है वह दुःख की वृष्टि क्यों कर रहा है। उदार महा = बादल चातक को देते-देते सारे संसार को जल दे देता है। तुलसीदास कहते हैं—

तुलसी चातक माँगनो एक, सबै घन दानि ।
देत जो भू-भाजन भरत लेत जो घूँटक पानि ॥

कैसे० = क्या कारण है, मेरी कोई त्रुटि है अथवा आपमें ही कोई दोष आ गया है। अनसुनी = सुनी अनसुनी की। यदि न सुनते, सुनाई न पड़ता तो भी अपना दोष होता। चातिक = 'चत्' याचने, माँगनेवाले इस प्रेम के भिखारी की पुकार। पुकार तो किसी की भी सुनी जाती है, भिखारी और प्रेम के भिखारी की तो अवश्य सुनी जाती है। व्रज में 'चातिक' बोलते रहे हैं।

पाठांतर—लहै=लहौं (पाऊँ)। गुन=गन (समूह, अधिक बोलने की शक्ति)। पै = की (षष्ठी, शेषे षष्ठी), दीन की दया, दीन पर की जानेवाली दया जो सभी करते हैं। 'नागरी-प्रचारिणी सभा' से प्रकाशित मनोरंजन-पुस्तकमाला के अंतर्गत 'रसखान और घनानंद' पुस्तक में 'व द्वार' के बदले 'बछार' पाठ दिया गया है। 'बछार' का अर्थ 'बौछार' टिप्पणी में दिया है। यह हस्तलेख पढ़ने की भूल है। 'द्व' की लिखावट कभी 'छ' की लिखावट से मिलती-जुलती हो जाती है।

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कों
सूरे पनपूरे जिन्हैं बिष सम अमी है।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंजपुंज
ता बिन बिचारनि हीं जोति-जाल तमी है।
चाहो अनचाहो जान प्यारे पै अनंदघन
प्रीतिरीति बिषम सु रोम-रोम रमी है।
मोहि तुम एक तुम्हैं मो सम अनेक आहि
कहा कछू चंदहि चकोरन की कमी है ॥३३॥

प्रकरण—प्रिय चाहे प्रेमी की ओर प्रवृत्त हो चाहे न हो, पर प्रेमी उसके विपरीत आचरण पर भी उससे प्रेम करना किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता, क्योंकि उसके लिए प्रिय एक ही है, भले प्रिय के लिए प्रेमी अनेक हों, इसमें प्रेमी ने अपने व्रत की दृढ़ता का आख्यान किया है, वह 'प्रियव्रत' है और 'दृढ़व्रत' है। इसके लिए उसने चातक का, कमल का और चकोर का उदाहरण दिया है।

चूर्णिका—चुहल = विनोदी। चहुँ ओर = सर्वत्र। सूरे० = प्रतिज्ञा पूर्ण करने में जो पूरे वीर हैं। अमी = अमृत। जिन्हैं० = जिन्हें स्वाती का जल

छोड़कर अमृत भी विषतुल्य है। भान = भानु (सूर्य) के उदित होने से। कंज = कमल। ता बिन = बिना सूर्य के। बिचारनि हीं = उन बेचारों के लिए। जोति-जाल = कोई ज्योति का समूह, ज्योतिष्क पिंड मात्र। तमी = तमिस्रा, रात्रि अथवा तम ही अंधकार ही। रमी = समाई हुई, छाई हुई, बसी हुई। कहा० = चंद्रमा को चकोरों की क्या कमी ? एक प्रिय के प्रेमी अनेक हो सकते हैं, पर प्रेमी के प्रिय अनेक अनुचित हैं। सच्चे प्रेमी ऐसा नहीं करते।

तिलक—हे प्रिय, विनोदी चातक सर्वत्र केवल स्वाती को ही चाहता है उसी नक्षत्र में जो जल बरसता है उसी को ग्रहण करता है। वह अपनी इस प्रतिज्ञा में इतना पूरा, ऐसा दृढ़ है कि उसके लिए अन्य जलों की बात ही क्या अमृत भी विषतुल्य है। उसके अतिरिक्त किसी पेय को वह ग्रहण ही नहीं करता। कमल-समूह की ओर देखिए तो सूर्य के उदय पर वह प्रफुल्ल होता है, विकसित होता है, आनंदित होता है। यदि वह न दिखे तो उन कमल बेचारों के लिए और चाहे कोई प्रकाश-पिंड क्यों न हो अंधकारमय ही प्रतीत होता है। मेरी वृत्ति भी उसी प्रकार की है। आप मुझे चाहें अथवा न चाहें, फिर भी मुझमें विषम प्रीति की रीति शरीर के रोम-रोम में समाई हुई ही मिलेगी। सम प्रीति तो आपके मेरी ओर उन्मुख होने पर होती, पर यदि आप मेरी ओर नहीं देखते तो विषम प्रीति भी एकांगी प्रीति भी होकर ज्यों की त्यों बनी रहेगी। उसका कारण यह है कि मेरे लिए तो प्रिय आप एक ही हैं, आपको मेरे ऐसे प्रेमी अनेक मिल जा सकते हैं। वैसे ही जैसे चंद्रमा एक है और उसे चाहनेवाले चकोरों की संख्या अनेक है। चकोर के लिए चंद्रमा की कमी है पर चंद्रमा के लिए चकोर की कमी नहीं है।

व्याख्या—चुहुल = विनोद, कौतुकी, बेढंगी प्रतिज्ञा करनेवाला। चहुँ ओर = चारो ओर स्वाती से बढ़कर मीठा निर्मल, पोषक जल देनेवाले (और भी) मिल सकते हैं, पर उसे केवल वही रुचता है। चाहै = देखता है, खोजता है, प्यार करता है। दूसरे को देखने पर भी केवल स्वाती को ही देखता है, दूसरों में भी स्वाती ही देखता है, उसे चारो ओर अपनी अनन्यता के कारण यदि दिखता है तो केवल स्वाती ही दिखता है। सूरे = 'शूर' उस वीर को कहते हैं जो युद्ध में आगे ही बढ़ना जानता हो, पीछे पैर रखना न जानता हो। यह भी वैसा ही है। पनपूरे = अपने पन (प्रतिज्ञा) का पूर्ण

करने में ही दत्तचित्त। जिनमें उनकी प्रतिज्ञा ही भरी-पूरी है, अन्य किसी की समाई जिनके अंतःकरण में नहीं है। विष० = जल के पर्याय विष और अमृत भी हैं। पोषक संजीवनी शक्ति अमृत की और मारक शक्ति विष की। इन्हीं की दृष्टि से जल के दो नाम हैं। जिलानेवाला भी जल और मारनेवाला भी जल। अमृत अमरत्व प्रदान करनेवाला है इससे सर्वोत्तम पेय है। अमृत विष है ऐसा नहीं, विषतुल्य है। अमृतत्व का निषेध प्रेमी चातक नहीं करता, उसमें विष का आरोप कर लेता है। अन्य के लिए अमृत हो, पर उसे विष और उसमें पार्थक्य नहीं लगता। अन्य विष का परित्याग करते हैं वह दोनों का परित्याग करता है। उसके लिए स्वाती का जल ही अमृत है। वह स्वाती का जल विष सम भी हो तो अमृत है। प्रफुल्लित० = विशेष फूलता है, प्रभात होने पर सूर्य न निकले तो कमल फूलता है, प्रफुल्ल तभी होता है जब सूर्य भी दिखाई दे। भान० = सूर्य के उदय से, उसके उत्थान से। प्रिय के उत्थान में उसको प्रसन्नता है। कंज = एक कमल नहीं अनेक कमल, अनेक प्रेमी। अनेकत्व का संकेत सर्वत्र है। चातक के प्रसंग में 'सूरे पनपूरे जिन्हैं' बहुवचनांत प्रयोग है। 'चकोरन' आगे बहुवचन प्रत्यक्ष है। ता बिन=सूर्य के अस्त होने पर। अभाव से वे 'बेचारे' हो जाते हैं। विवश हो जाते हैं। जोति-जाल = एक नहीं सभी ज्योति-पिंड, पृथक्-पृथक् या एक साथ उदित हों तो भी। तमी = तममय, तमजाल, अंधकार का समूह मात्र है। चाहौं० = आपकी ओर से चाहे दोनों में से कोई वृत्ति दिखाई पड़े एकांगी प्रेम की साधना मेरी नहीं छूट सकती। आपके चाहने पर भी मेरी ओर से किसी प्रकार का शैथिल्य नहीं हो सकता, मैं प्रिय की कोटि में आने के लिए तत्पर नहीं, प्रेमी ही बना रहूँगा। जान प्यारे = प्राणप्यारे का भी संकेत। आनंदघन = कवि का नाम भी और प्रीति-रीति का विशेषण भी हो सकता है। अति आनंददायिनी प्रीति की रीति। प्रीतिरीति = प्रीति भी और उसकी रीति, प्रतिज्ञा के निबाहने का व्रत भी। बिषम = प्रीति तो विषम है पर रोम में विषमता नहीं है, प्रत्येक रोम उसे समभाव से ग्रहण किये हुए है। सु० = वह अथवा सुष्ठु। रोम० = शरीर का कोई अंश प्रेमरहित नहीं है। रसी है = उसमें इतनी मिल गई है कि अब निकल नहीं सकती। तुम = यों 'तुम' बहुवचन है, आपको आदर में 'तुम'.

कह रहा हूँ, वस्तुतः आप एक हैं। मो = एकवचन है, पर मेरे से अनेक दिखाई पड़ेंगे। सम = मैं ही तो अन्यत्र न मिलूंगा, पर मेरे समान प्रेमी बहुत मिलेंगे। आहिं = हैं, भविष्य में होंगे यह भी नहीं, पहले से ही अनेक प्रेमी हैं। कछू = थोड़ी भी कमी।

चातक के द्वारा प्रतिज्ञा-पूर्ति की ओर संकेत है, कमल के द्वारा प्रियदर्शन से प्रफुल्लता की ओर तथा चकोर से प्रिय-प्रेम से कष्ट-सहन की ओर संकेत है।

व्याकरण—'पन' = संस्कृत में शब्द 'पण' ही है, हिंदी में 'र्' का आगम है। 'प्रण' की ही भाँति अन्यत्र भी 'र्' का आगम हिंदी में होता है। शोणित का श्रोणित, शाप का श्राप और घूम का घूम्र।